

श्रीमद्भागवत गीता एवम अष्टावक्र गीता - एक तुलनात्मक अध्ययन
आशीष सेमवाल, तृप्ति जुयाल
माया ग्रुप ऑफ कॉलेजेस, देहरादून, इंडिया

सार -

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवोः महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात् पर ब्रह्माः तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

गुरु— शिष्य संवाद के रूप में तत्त्वज्ञान के विषय पर जितने भी ग्रन्थों की रचना हुई है, उनमें 'अष्टावक्र गीता' एवं 'श्रीमद्भगवद्गीता' को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसलिए विद्वानों द्वारा इसे 'गीता' ही नहीं 'महागीता' की संज्ञा दी जाती है। इसमें महत्वपूर्ण वेदों का सार संग्रह किया गया है। सरल—सहज शब्दों से मुक्त इसका आशय अत्यन्त गम्भीर है। अल्पायु में आठ स्थानों से विकृत शरीर वाले मुनि अष्टावक्र का जनक जैसे ज्ञानी को शास्त्रार्थ में पराजित करना, जनक का शिष्यत्व ग्रहण करके परम श्रद्धा से उपदेश सुनना, आत्मज्ञान सम्बन्धी जनक की स्वाभाविक शंकाओं का समुचित समाधान तथा विभिन्न अनुभूतियों के संग्रह से संचित यह ग्रन्थ वस्तुतः ज्ञान का प्रकाश पुंज है।

परीचय -

अष्टावक्र—गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता अद्वैत विषयक उन अनुपम ग्रन्थों में से एक है जिसमें आध्यात्मिक प्रश्नों की बड़ी ही सरल, सारगर्भित एवं तर्कपूर्ण विवेचना की गयी है। अष्टावक्र—गीता में राजा जनक श्रोता के रूप में और अष्टावक्र वक्ता के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि श्रीमद्भगवद्गीता में जो श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद हमें प्राप्त होता है वह युद्ध पूर्व वातावरण के बीच घटित हुआ संवाद है। वहाँ श्रोता के रूप में अर्जुन मोहग्रस्त हो, युद्ध न करने का निश्चय करते हैं। अर्जुन के चित का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि अर्जुन एक किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति है जोकि अपने कर्तव्य पथ से भटक गया है और सत्य—असत्य का निर्णय करने में असमर्थ है। इसके विपरीत अष्टावक्र—गीता का श्रोता राजा जनक एक विवेकी, विचारवान एवं मुमुक्षु पात्र हैं जो मुमुक्षाभाव लिए महान तत्त्वज्ञानी अष्टावक्र के समक्ष उपस्थित हैं।

अष्टावक्र—गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता की पृष्ठभूमि में पर्याप्त अन्तर यह भी है कि श्रीमद्भगवद्गीता में जहाँ ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी का संगम दिखाई पड़ता है, वहीं अष्टावक्र—गीता में ज्ञान का प्रधान्य स्पष्ट होता है। जहाँ श्रीमद्भगवद्गीता का श्रोता अर्जुन ज्ञान प्राप्ति का इच्छुक नहीं है वहीं दूसरी ओर अष्टावक्र—गीता का श्रोता राजा जनक एक विवेकी व्यक्ति है जो मोक्ष की अभिलाषा से आध्यात्मिक जिज्ञासा लिए अष्टावक्र से शंका समाधान के लिए उत्सुक है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जहाँ अर्जुन की शंकायें कर्म—कर्तव्य को लेकर हैं वहीं दूसरी ओर राजा जनक की शंकायें ज्ञान, मुक्ति और वैराग्य आदि जैसे आध्यात्मिक विषयों से जुड़ी हुई हैं। राजा जनक और अष्टावक्र के बीच जो संवाद हुआ उस संवाद के परिणामस्वरूप ही इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ जो अष्टावक्र—गीता के रूप में निर्मित है।

अष्टावक्र—गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता पर शोध की आवश्यकता—

अभी तक श्रीमद्भगवद्गीता पर तो अनेक शोध कार्य हुए हैं परन्तु अष्टावक्र—गीता जैसे आत्मज्ञान विषयक ग्रन्थ पर प्रायः शोध उपलब्ध नहीं है। संभवतः इसका मुख्य कारण यह रहा हो कि जितनी श्रीमद्भगवद्गीता की ख्याति है उतनी अष्टावक्र—गीता की न हो। और यह भी हो सकता है कि लोग अष्टावक्र—गीता से परिचित ही न हो। शायद उन्हें यह पता ही न हो कि श्रीमद्भगवद्गीता के अतिरिक्त भी अन्य कोई गीता भी है।

श्रीमद्भगवद्गीता में जहाँ ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी का संगम व समन्वय दिखाई देता है वहीं अन्य गीताओं में ज्ञान का, किसी में भक्ति का, किसी में कर्म का, किसी में ज्ञान—कर्म का, किसी में ज्ञान—भक्ति का प्रधान्य दिखाई पड़ता है। अतः सभी गीतायें किसी न किसी रूप में वेदान्त की प्रतिपादक हैं और औपनिषदिक ज्ञान को व्यक्त करती हैं।

अष्टावक्र—गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता को शोध हेतु चयनित करने का मुख्य कारण इनकी विषय वस्तु है, क्योंकि आज इन ग्रन्थों पर बहुत सी टीकायें, व्याख्यायें व अनुवाद उपलब्ध हैं परन्तु इन दोनों ग्रन्थों के महत्वपूर्ण विषय जैसे— ज्ञान, मुक्ति, वैराग्य, आत्मा का स्वरूप, अज्ञान व बन्धन, अहंकार और तृष्णा, जीव—ब्रह्म का सम्बन्ध, जगत्, ज्ञान और कर्म, जीवनमुक्ति की अवधारणा आदि की दार्शनिक विवेचना का सर्वथा अभाव ही है। इसलिए अष्टावक्र—गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता ग्रन्थों पर शोध कार्य करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से अष्टावक्र—गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता के दार्शनिक पक्ष को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

आत्मा का विश्लेषणात्मक (विशेषरूप) अध्ययन—

अष्टावक्र गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा के लिए अनेक विशेषणों का प्रयोग किया गया है उन सभी विशेषणों को वर्तमान स्वरूप के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. विधिरूप विशेषण एवं
2. निषेधरूप विशेषण

अष्टावक्र गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा के लिए सद्रूप, चिद्रूप, आनन्द स्वरूप, अतिसुन्दर, अनन्त, एक, कूटस्थ, जगदीश्वर, भगवान, परमात्मा, द्रष्टा, नित्य, पूर्ण, प्रकृति से परे, ब्रह्म, मुक्त, विभु, विश्वसाक्षी, शान्त, शिव, शुद्ध, सनातन, साक्षी, स्वयंप्रकाश आदि आत्मा के विधिरूप विशेषणों का प्रयोग कर आत्मा के स्वरूप की व्याख्या की गयी है।

अष्टावक्र गीता में अक्रिय, अखण्ड, अद्वैत, अमल, अव्यय, असंग, द्वन्द्वरहित, निःस्पृह, निःस्वभाव, निरंजन, निरपेक्ष, निराकार, निरामय, निरायास, निर्विकल्प, निर्विकार, निर्विमर्ष, निर्विशेष, निष्प्रपंच, संतापरहित आदि निषेधरूप विशेषणों का प्रयोग हुआ है।

आत्मा के विधिरूप विशेषण का अध्ययन—

आत्मा के विधिरूप विशेषणों के अध्ययन के लिए आवश्यक है कि इसकी पृथक्—पृथक् विवेचना कर इसके दार्शनिक स्वरूप को जानने का प्रयास किया जायं। आत्मा के विधिरूप विशेषणों की दार्शनिक विवेचना निम्नवत् है—

- आत्मा के सद्रूप स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र गीता में आत्मा को सद्रूप अर्थात् सत् स्वरूप में स्वीकार किया गया है। आदि गुरु शंकराचार्य ने भी आत्मा के सद्रूप स्वरूप को स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है कि जो वस्तु किसी भी साधन से बाधित न हो तथा जो तीनों कालों एवं दोनों लोकों में एक ही रूप में विद्यमान हो उसे ही सद्रूप कहा जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा को सदा एक ही रूप में रहने वाली तथा किसी भी रूप में किसी भी साधन से बाधित नहीं होने वाला पदार्थ स्वीकार किया गया है। अतएवं आत्मा सद्रूप पदार्थ है। **पंचदशी** में भी आत्मा के विषय में वर्णित है कि बाध से शून्य को ही सत्य कहा जाता है अतः आत्मा सत्य है जिसे कभी समाप्त नहीं किया जा सकता है। आत्मा का एक स्वरूप है जो अमर है।

● **आत्मा के आनन्द स्वरूप का अध्ययन—**

अष्टावक्र गीता में आत्मा को आनन्द स्वरूप स्वीकार करते हुए महर्षि अष्टावक्र कहते हैं कि जिसके बोध के उदय होने पर समस्त भौति स्वप्न के समान तिरोहित हो जाती है, उस एकमात्र आनन्द स्वरूप, शान्त और तेजोमय को नमस्कार है। अष्टावक्र गीता के अनुसार— हे चिन्मय! तू चित्त को संकल्पों और विकल्पों से क्षोभित मत कर, शान्त होकर आनन्दपूरित अपने स्वरूप में सुखपूर्वक स्थित हो। पुनः अष्टावक्र गीता के अनुसार— तू वही आनन्द परमानन्द बोध है अतएव तू सुखपूर्वक विचर। महर्षि अष्टावक्र के विचारों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अष्टावक्र गीता में भी उपनिषदों का वही उद्घोष सुनाई पड़ता है जिसमें आत्मा को सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्द स्वरूप स्वीकार किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा की आनन्द-रूपता को सिद्ध करने हेतु दो तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है—

1. आत्मा सुख स्वरूप इसलिए है कि उसका और सुख का लक्षण एक ही है, सुख का लक्षण आत्मा को घटता है। जो वस्तु अपनी सत्ता से ही परार्थता को छोड़ देती है उसे सुख कहते हैं। सब पदार्थों की कामना सुख के लिए की जाती है, परन्तु सुख की कामना किसी अन्य वस्तु के लिए नहीं होती, स्वयं सुख के लिए ही होती है इसलिए सुख वह है जो परार्थ या दूसरे के लिए नहीं है। सुख का यह लक्षण आत्मा में भी वर्तमान है इसलिए आत्मा सुख-स्वरूप है। सब चीजें आत्मा के लिए हैं, आत्मा किसी के लिए नहीं।
2. सुख का दूसरा लक्षण यह है कि उसमें भी उपाधिहीन प्रेम होता है, अन्य वस्तुओं का प्रेम औपाधिक है। आत्मा में भी उपाधिशून्य प्रेम होता है। आत्मा के लिए ही सब वस्तुयें— पिता-पुत्र, भार्या, धन आदि प्रिय होती हैं। इस युक्ति से भी आत्मा आनन्द स्वरूप है। इसमें दुःख कभी नहीं है, विषयों का अभाव होते हुए भी आत्मा आनन्द का अनुभव होता है।

● **आत्मा के अति सुन्दर स्वरूप का अध्ययन—**

अष्टावक्र गीता में आत्मा के लिए अतिसुन्दर शब्द का प्रयोग किया गया है। महर्षि अष्टावक्र कहते हैं कि आत्मा को शुद्ध चैतन्य व अति सुन्दर भी कैसे कोई इन्द्रिय के विषय में अत्यन्त आसक्त होकर मलिनता को प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा की अति सुन्दरता को स्वीकार किया गया है इसमें कहा गया आत्मा शुद्ध और चैतन्य है आत्मा स्वेच्छा से किसी को स्वीकारती है। आत्मा शरीर की सबसे मजबूत कड़ी और इन्द्रिय है।

● आत्मा के अनन्त स्वरूप का अध्ययन—

अनन्त का अर्थ होता है जिसका कभी अन्त न हो। इसी अर्थ में अष्टावक्र गीता में अनन्त शब्द का प्रयोग आत्मा के लिए किया गया है। अष्टावक्र गीता में राजा जनक कहते हैं कि मैं आकाश की भाँति अनन्त हूँ। राजा जनक पुनः कहते हैं कि आत्मा विषयों में नहीं है और विषय उस अनन्त निरंजन आत्मा में नहीं है। अष्टावक्र गीता के अनेक श्लोकों में आत्मा को अनन्त घोषित किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा को अनन्त बताया गया है। आत्मा के व्यापक, नित्य, सर्वात्मा, सर्वाधिष्ठान होने से, देषकृत, कालकृत और वस्तुकृत अन्तर के अभाव (निषेध) से आत्मा त्रिविधि अन्तरहित, अनन्त कहा जाता है।

● आत्मा के एकात्म स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र गीता आत्मा को एक स्वीकार करती है। इस मत को वेदान्त की शब्दावली में एकात्मवाद कहा जाता है। नन्दलाल दशोरा अष्टावक्र गीता की व्याख्या में कहते हैं कि जब ब्रह्म एक है तो आत्मा भी एक ही है, भिन्नता नहीं है। सभी जीवों में भिन्न-भिन्न आत्मा नहीं है। जिस प्रकार आकाश सर्वत्र व्याप्त है, भीतर-बाहर सभी जगह। खुले आकाश, घड़े के भीतर के आकाश व शरीर के भीतर के आकाश में भिन्नता नहीं, उसी प्रकार आत्मा में भी भिन्नता नहीं है। अष्टावक्र गीता का यह विचार जिसमें सम्पूर्ण भूतों में एक ही आत्मा निवास करती है ऐसा दर्शाया गया है। समस्त प्राणियों में स्थित एक देव हैं अनेक रूपों में समाविष्ट हुआ वह एक ही देव है। अष्टावक्र गीता के अनेक श्लोक आत्मा के एक होने की घोषणा करते हैं। कहते हैं कि पहले केवल एक आत्मा ही थी।

वेदान्त दर्शन में तीन प्रकार के भेद माने गए हैं—

1. सजातीय भेद— एक ही प्रकार की वस्तुओं के बीच में जो भेद होता है उसे सजातीय भेद कहा जाता है जैसे एक गाय और दूसरी गाय।
2. विजातीय भेद— जब दो असमान वस्तुओं में भेद होता है तब उस भेद को विजातीय भेद कहा जाता है। गाय और घोड़े में जो भेद है वह विजातीय भेद का उदाहरण है।
3. स्वगत भेद— एक ही वस्तु और उसके अंशों में जो भेद होता है उसे स्वगत भेद कहा जाता है। गाय के सींग और पूँछ में जो भेद है वह स्वागत भेद का उदाहरण है।

आत्मा उपरोक्त तीनों भेदों से रहित होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि आत्मा तू एक ही है। तुझ सी कोई दूसरी वस्तु नहीं है। न ही कोई तेरे विपरीत गुणों वाली आत्मा है और तेरी अपनी शाखायें, प्रशाखायें भी नहीं हैं। इस तरह तू एक है, अकेली है, सभी कालों, देशों और वस्तुओं में सदैव समान रूप से व्याप्त है, इसलिए भी एक है।

● आत्मा के जगदीश्वर, भगवान एवं परमात्मा स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र गीता के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यह समग्रता से एकमात्र अद्वैत तत्व का समर्थन करती है। आत्मा से इतर किसी भी वस्तु की वास्तविक सत्ता का स्वीकार करना

अष्टावक्र के दर्शन में मान्य नहीं है। इसीलिए वे आत्मा और परमात्मा का द्वैत अस्वीकार करते हैं। अष्टावक्र इसे इस प्रकार दर्शाते हैं कि कोई विरला ही आत्मा को अद्वय और जगदीश्वर रूप में जानता है वह जिसे करने योग्य मानता है उसे करता है, उसे कहीं भी भय नहीं है। पुनः अष्टावक्र के अनुसार— हे सौम्य! हे प्रिये! श्रद्धाकर, श्रद्धाकर इसमें मोह मत कर। तू ज्ञान स्वरूप है, भगवान है, परमात्मा है, प्रकृति से परे है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा को भगवान का स्वरूप दिया गया है। श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं कि आत्मा तो अमर होने के साथ ही भगवान का रूप है अतः तू निःसंकोच अपने कर्म को कर परिणाम की व्याख्या तो कर्म पर निर्भर है। व्यक्ति का स्वरूप तो जगदीश्वर के रूप में ही विद्यमान है। अतः आत्मा का परिणाम तो उसके द्वारा किए गए कर्म पर ही निर्भर करता है।

● आत्मा के द्रष्टा स्वरूप का अध्ययन—

द्रष्टा का अर्थ होता है देखने वाला। **अष्टावक्र गीता** में आत्मा को द्रष्टा कहा गया है। अष्टावक्र गीता कि अनुरूप ही शंकराचार्य द्रष्टा शब्द को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं कि वह अदृश्य – न देखा हुआ अर्थात् किसी की भी नेत्रदृष्टि का विषयीभूत नहीं है किन्तु स्वयं नेत्र में सन्निहित होने के कारण दर्शनस्वरूप है। इसलिए द्रष्टा है। अष्टावक्र ने साक्षी और द्रष्टा को एक ही अर्थ में ग्रहण किया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में यह सिद्ध है कि मैं द्रष्टा हूँ और देह दृश्य रूप से स्थित है यह देह मेरा कहा जाता है अतः पुरुष आत्मा देह कैसे हो सकता है। ओशो महागीता में इसी बात की पुष्टि की गयी है कि मनुष्य का स्वभाव द्रष्टा का है। न तो दृश्य बनना है और न दर्षक। दर्षक का अर्थ है दृष्टि दूसरे पर है और द्रष्टा का अर्थ है दृष्टि अपने पर है। दृष्टि देखने वाले पर है तो द्रष्टा। और दृष्टि दृश्य पर है तो दर्षक। बड़ा क्रान्तिकारी भेद है बड़ा बुनियादी भेद है। जब तुम्हारी दृष्टि दृश्य पर अटक जाती है तुम अपने को भूल जाते हो तो दर्षक। जब तुम्हारी दृष्टि से सब दृश्य विदा हो जाते हैं तुम ही रह जाते हो, जागरण मात्र रह जाता है, होष मात्र रह जाता है— तो द्रष्टा।

● आत्मा के नित्य स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र गीता में आत्मा को नित्य बताया गया है। आत्मानात्मविवेक में शंकराचार्य ने कहा है कि किसी काल की सीमा में न रहकर सम्पूर्ण कालों में रहने वाली वस्तु को नित्य कहा जाता है। अपरोक्षानुभूति में शंकराचार्य कहते हैं कि आत्मा नित्य है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी आत्मा को नित्य माना गया है। कहा गया है कि आत्मा सदा से वर्तमान है। संसार में अणु अथवा महत्वरिमाणवाली जो कुछ वस्तु हैं वह उस नित्य स्वरूप आत्मा से ही आत्मवान् हो सकती है।

● आत्मा के पूर्ण स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र कहते हैं कि आत्मा पूर्ण है। उसमें किसी भी प्रकार की अपूर्णता नहीं है। अष्टावक्र मानते हैं कि आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में अखण्ड है इसलिए उसमें किसी भी प्रकार की अपूर्णता सम्भव नहीं है। वे कहते हैं कि परमात्मा सदैव पूर्ण है और आत्मा भी साक्षात् परमात्मा रूप है। इसीलिए वह भी पूर्ण है। इशावास्योपनिषद् के आरम्भ और अन्त में शान्ति पाठ आया है। जिसका अर्थ है कि वह पूर्ण है और यह भी पूर्ण है क्योंकि पूर्ण से ही

पूर्ण की उत्पत्ति होती है तथा पूर्ण का पूर्णत्व लेकर ही पूर्ण बचा रहता है। आत्मा पूर्ण एवं महान होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने प्रवचन देते हुए कहा है कि तुम पूर्ण हो, पूर्ण होना नहीं है। तुममें कुछ भी जोड़ा नहीं जा सकता। तुम जैसे हो, परिपूर्ण हो। तुम्हें कुछ विकास नहीं करना है। तुम्हें कुछ सोपान नहीं चढ़ने हैं। तुम्हारे आगे कुछ भी नहीं है। तुम पूर्ण हो। श्रीकृष्ण ने आत्मा को पूर्ण की संज्ञा दी है।

- आत्मा के प्रकृति से परे स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र ने आत्मा को प्रकृति से परे कहा है। यह संसार भौतिक है, जड़ है, प्रकृतिजन्य है। तू आत्मा है जो प्रकृति से परे ज्ञान स्वरूप व भगवान स्वरूप है। तुम आत्मा हो! प्रकृति से परे हो! प्रकृते: परः! शरीर नहीं हो, मन नहीं हो। यह जो दिखाई पड़ता है, यह नहीं हो। यह जो दृश्य है यह नहीं हो। द्रष्टा हो! सदा पार हो। प्रकृति के पार, सदा अतिक्रमण करने वाले हो। पुनः न मैं देह हूँ, न मन हूँ, न भाव हूँ, न हिन्दू, न मुसलमान, न इसाई, न ब्राह्मण, न शूद्र, न बच्चा, जवान, न बूढ़ा, न सुन्दर, न बुद्धिमान न बुद्धू— मैं कोई भी नहीं हूँ सारी प्रकृति से परे हूँ।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी आत्मा को प्रकृति से परे मानते हुए लिखा गया है कि आत्मा तो शुद्ध, अक्षर, शान्त, निर्गुण और प्रकृति से परे है तथा समस्त जीवों में एक ही ओतप्रोत है। अतः उसकी वृद्धि अथवा क्षय कभी नहीं होते। पुनः आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है।

- आत्मा के ब्रह्म स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र भी उपनिषदों की तरह आत्मा को ब्रह्म कहते हैं। शंकर के दर्शन में जहाँ आत्मा को ब्रह्म कहने की प्रकृति अधिक दिखाई पड़ती है वहीं अष्टावक्र ब्रह्म को आत्मा कहना ज्यादा पसन्द करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि अष्टावक्र गीता में परमसत्ता के आत्मनिष्ठ स्वरूप पर अधिक बल दिया गया है। इसलिए अष्टावक्र गीता में ब्रह्म के स्थान पर 'आत्मा' शब्द का प्रयोग अधिक किया गया है। अष्टावक्र गीता का ब्रह्मात्मैक्य सिद्धान्त सदैव उपनिषद् दर्शन के अनुरूप है, क्योंकि बृहदारण्यकोपनिषद् तथा माण्डूक्योपनिषद् में भी आत्मा को ब्रह्म कहा गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी आत्मा और ब्रह्म की एकता का समर्थन करते हुए कहा गया है कि आत्म ब्रह्म है, ऐसा उस अनुभव में जाना जाता है जहाँ तुम्हारी सीमायें गिर जाती हैं औ असीम तुम्हारे बीच कोई भेद—रेखा नहीं रह जाती है। आत्मा ब्रह्म है इसका अर्थ हुआ बूँद सागर के समान है।

- आत्मा के मुक्त स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र गीता की मान्यता है कि आत्मा स्वरूपतः मुक्त स्वभाव है। महर्षि अष्टावक्र राजा जनक को कहते हैं कि तू सर्वदा सचमुच मुक्त ही है। पुनः महर्षि अष्टावक्र कहते हैं कि तू सबका एक द्रष्टा है और सदा सचमुच मुक्त है। अष्टावक्र गीता में कहा गया है कि तू आत्मा मुक्त ही है, तू विचार करके क्या करेगा। अष्टावक्र गीता आत्मा को स्वरूपतः मुक्त ही मानती है। राजा जनक भी आत्मा का बन्ध या मोक्ष नहीं स्वीकार करते हैं। महर्षि अष्टावक्र पुनः राजा जनक को कहते हैं कि तेरा बन्ध और मोक्ष नहीं।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी आत्मा के मुक्त स्वरूप को ही माना गया है और आत्मा का जो बन्धन जान पड़ता है वह मात्र प्रतीति है जोकि अज्ञान के कारण है। वास्तव में आत्मा नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव की प्रतीति ही है।

- आत्मा के शान्त स्वरूप का अध्ययन-

अष्टावक्र गीता में आत्मा को शान्त रूप में स्वीकार किया गया है। आत्मा के लिए 'षान्त' शब्द अनेक बार प्रयोग हुआ है। अष्टावक्र गीता की यह प्रतिध्वनि अन्य उपनिषदों में भी दिखाई पड़ती है। उसमें भी आत्मा के लिए शान्त शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी आत्मा को शान्त माना गया है कहा गया है कि आत्मा शान्त है, गम्भीर है, इसमें कोई हलचल होती ही नहीं, इसमें कोई तरंग उठती ही नहीं और यह उद्वेलित होती ही नहीं है।

- आत्मा के शिव स्वरूप का अध्ययन-

अष्टावक्र गीता में आत्मा के लिए 'शिव' शब्द का विशेषण प्रयोग किया गया है। इस शिव शब्द का अर्थ त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) में से एक देव 'शिव' न होकर उस आत्मा के लिए किया गया है जो समस्त उपाधिरहित, कल्याणरूप व मंगलरूप है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी आत्मा में गुरु, शिष्य का विचार भी नहीं है उसमें उपदेश का विचार भी नहीं है। मैं ही परमार्थ में शिव रूप हूँ फिर मैं यहाँ किस प्रकार अभिवादन करूँ। अतः यहाँ भी आत्मा को शिव के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

- आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अध्ययन-

अष्टावक्र गीता में आत्मा के लिए 'शुद्ध' शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में हुआ है। महर्षि अष्टावक्र की मान्यता है कि आत्मा स्वरूपतः शुद्ध ही है इसलिए उसकी शुद्धि करने का प्रश्न ही नहीं उठता, वह कभी अशुद्ध हुआ ही नहीं तो फिर किसकी शुद्धि और किसके द्वारा शुद्धि। आत्मा स्वयं ही शुद्ध चैतन्य है। इसके समर्थन में अवधूत गीता में दत्तात्रेय कहते हैं कि आत्मा षडंग योग (आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) से शुद्ध नहीं होता, मन के नाश होने से भी शुद्ध नहीं होता, गुरु के उपदेश से भी शुद्ध नहीं होता। वह स्वयं ही सार तत्व है और स्वयं ही शुद्ध है। अष्टावक्र गीता में शुद्ध स्वरूप आत्मा के विषय में कहा गया है कि कुबुद्धि पुरुष शुद्ध अद्वैत आत्मा की भावना करते हैं लेकिन मोहवष उसे नहीं जानते हैं इसलिए जीवन भर सुख-रहित रहते हैं। इसके अतिरिक्त भी शुद्ध शब्द अष्टावक्र गीता में अनेक बार आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी आत्मा के शुद्ध रूप को स्वीकारते हुए कहा गया है कि आत्मा शुद्ध, सुन्दर और सुबुद्ध है।

- आत्मा के सनातन स्वरूप का अध्ययन-

अष्टावक्र गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा को सनातन स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्वविवेचनी में कहा गया है कि जो सदा से हो और सदा एक रस बना रहे उसे सनातन कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी आत्मा के सनातन स्वरूप को ही स्वीकृति प्रदान की गयी है।

- आत्मा के साक्षी स्वरूप का अध्ययन-

अष्टावक्र गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा को साक्षी कहा है। नन्दलाल दशोरा अष्टावक्र गीता की व्याख्या में आत्मा का स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि आत्मा साक्षी है। सबकी दृष्टा है, यह सबको देखती है किन्तु इसे कोई देखने वाला ही नहीं है यह तुम्हारा होना है। पंचदशी में कहा गया है कि अहंकार रूप कर्ता को और अहम् इदम् आदि मन की वृत्तिरूप क्रिया को और परस्पर विलक्षण गन्धादि इन्द्रियों के विषय को, एक यत्न से प्रकाश करे वह इस वेदान्त शास्त्र में चिद्रूप साक्षी कहलाता है। इसमें कहा गया है कि नृत्यशाला में रखा हुआ दीपक राजा, सभासद और नर्तकी इन सबको अविशेष से प्रकाश करता है और उसके न होने पर भी स्वयं ही प्रकाशित रहता है उसी प्रकार साक्षी भी अहंकार, बुद्धि और विषय इनको प्रकाशित करता रहता है, और सुषुप्ति आदि के समय अहंकार आदि के अभाव में स्वयं भी पूर्व के समान भासता है।

● **आत्मा के निराकार स्वरूप का अध्ययन—**

निराकार का अर्थ है समस्त आकारों से रहित। **अष्टावक्र गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता** में भी उपनिषद् वर्णित निराकार आत्मा की पुष्टि की गयी है। अष्टावक्र गीता में राजा जनक से कहते हैं कि मैं अत्यन्त शान्त हूँ, निराकार हूँ, और इसी अवस्था में स्थित हूँ। कि साकार (शरीरादि) को मिथ्या जान, निराकार (आत्मा) को निश्चल (स्थिर) जान। इस तत्व के उपदेश से संसार में पुनः उत्पत्ति नहीं होती। स्वामी भोले बाबा भी आत्मा को निराकार ही स्वीकार करते हैं। आचार्य शंकर विवेक चूडामणि में कहते हैं कि असंग, निष्क्रिय और निराकार है उस आत्मा का पदार्थों से, नीलता आदि से आकाश के समान भ्रम के अतिरिक्त और किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं हो सकता। प्रलयकाल के समुद्र के समान अत्यन्त परिपूर्ण एक पदार्थ में जो निर्विकार, निराकार और निर्विशेष है भला भेद कहाँ से आया। अपरोक्षानुभूति में भी आत्मा को निराकार कहा गया है। आत्मा इन्द्रिय और मन का अविषय होने से सूक्ष्म है अर्थात् स्थूल नहीं है। आत्मा व्यापक है, इससे सूक्ष्म नहीं अर्थात् अणु नहीं। आत्मा सभी में ओतप्रोत है, इससे लम्बा और छोटा भी नहीं है। अतः आत्मा निराकार है। यह दृश्य मान सम्पूर्ण जगत् जिस आत्मा द्वारा आत्मा से आत्मा में ही पूर्ण हो रहा है उस निराकार आत्मा का मैं किस प्रकार वन्दन करूँ क्योंकि वह जीव से अभिन्न है, कल्याण स्वरूप है तथा अव्यय है।

● **आत्मा के निरामय स्वरूप का अध्ययन—**

निरामय का अर्थ है रोग से रहित। महर्षि **अष्टावक्र** आत्मा को निरामय स्वीकार करते हुए कहते हैं कि इस संसार में अभ्यास परायण पुरुष उस आत्मा को नहीं जानते हैं जो शुद्ध—बुद्ध, प्रिय, पूर्ण, प्रपंचरहित और रोग रहित है।

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानी जगत् के स्वामी उस शाश्वतआत्मा को प्राप्त होता है जो रोगरहित, आकार रहित, प्रतिमारहित, निराश्रय, शरीर से रहित, इच्छा से रहित, द्वन्द्व रहित, मोहर रहित तथा अलुप्त शक्तिवाला है। मैं जन्म—मरण से भी मुक्त हूँ तथा जन्म—मरण के रोग से भी मुक्त हूँ।

● **आत्मा के निर्विकल्प स्वरूप का अध्ययन—**

निर्विकल्प का अर्थ होता है विकल्प से रहित। अष्टावक्र राजा जनक को कहते हैं कि तू निर्विकल्प, निर्विकार, बोध स्वरूप है तू सुखी हो। अष्टावक्र पुनः कहते हैं कि आत्मा निर्विकल्प है। ज्ञान हो जाने पर, राजा जनक ने कहा कि मैं शुद्ध बोध हूँ मुझमें अज्ञान के

कारण उपाधि की कल्पना की गयी है। इस प्रकार नित्य विचार करते हुए मैं निर्विकल्प स्थित हूँ अष्टावक्र गीता कहती है कि ब्रह्म से लेकर तृणपर्यन्त मैं ही हूँ— ऐसा जो निश्चयपूर्वक जानता है वह निर्विकल्प शुद्ध, शान्त और लाभालाभ से मुक्त है। अष्टावक्र गीता में पुनः कहा गया है कि निर्विकल्प स्वभाव वाले योगी के लिए राज्य और भिक्षावृत्ति में, लाभ और हानि में, समाज और वन में फर्क नहीं है। अष्टावक्र निर्विकल्प आत्मा के विषय में कहते हैं कि सदा आकाशवत् निर्विकल्प ज्ञानी को संसार है, कहीं आभास, कहीं साध्य है और कहीं साधन है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा के निर्विकल्प स्वरूप को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि अखण्ड बोध स्वरूप निर्विकल्प आत्मा में किसी विकल्प का होना आकाश में नगर की कल्पना के समान है, इसलिए अद्वितीय आनन्द आत्मस्वरूप में स्थित होकर परम शान्ति लाभ कर मौन धारण करो।

● आत्मा के निर्विकार स्वरूप का अध्ययन—

निर्विकार का अर्थ है विकार रहित। अष्टावक्र गीता में आत्मा को निर्विकार कहा गया है। अष्टावक्र गीता कहती है कि राग द्वेष मन के धर्म हैं, मन कभी तेरा नहीं। तू निर्विकल्प, निर्विकार, बोध स्वरूप है, तू सुखी हो। अष्टावक्र गीता में अन्यत्र भी आत्मा को निर्विकार सिद्ध किया गया है। आत्मा को देहादि का साक्षी होने के कारण निर्विकार कहा गया है क्योंकि विकार सदैव देहादि में होते हैं निर्विकार चैतन्य आत्मा में नहीं।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि जो उत्पन्न होता है, स्थित है, परिणाम को प्राप्त होता है, बढ़ता है, क्षण—क्षण क्षीण होता है और नाश को प्राप्त होता है। ये षट्भाव स्थूल देह के धर्म हैं। आत्मा षट्विकारों से रहित होने के कारण निर्विकार है। जिस प्रकार घट में स्थित आकाश जिस निर्विकार है इसी प्रकार इस देह में आत्मा विकार रहित है, इस प्रकार देह और आत्मा इन दोनों के धर्म परस्पर विरुद्ध हैं, अज्ञानीजन अविद्या से देह को आत्मा मानते हैं और ज्ञानी देह से आत्मा को पृथक् देखते हैं। इस प्रकार जो आत्मा स्वयंप्रकाश पंचकोषों से विलक्षण, अवस्थात्रय का साक्षी होकर निर्विकार, निर्मल और नित्यानन्द स्वरूप है उसे ही विद्वान् पुरुष को अपनी वास्तविक आत्मा समझना चाहिए क्योंकि आत्मा निर्विकार स्वरूप है।

● आत्मा के अखण्ड स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र गीता में आत्मा को विभाग रहित अर्थात् अखण्ड माना गया है। जीव—ईश्वर का भेद, जीव—जीव का भेद, जीव—जड़ का भेद, जड़—ईश्वर का भेद, जड़—जड़ का भेद, ये पाँच भेद हैं। आत्मा इनसे रहित है अथवा सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद से आत्मा रहित है। इसलिए आत्मा अखण्ड है। अपने अज्ञान से कल्पित देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और अहंकार आदि समस्त उपाधियों से रहित अखण्ड आत्मा को महाकाष की भोंति सर्वत्र परिपूर्ण देख।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार आत्मा सदा प्रकाशमान है तथा अखण्ड भी है। जो अखण्ड है उसका खण्डन कैसे करते हो।

● आत्मा के अद्वैत स्वरूप का अध्ययन—

अष्टावक्र गीता में आत्मा को अद्वैत कहा गया है। अष्टावक्र गीता के अनुसार— मैं आभास रूपी अहंकारी जीव हूँ ऐसे भ्रम को और बाहर भीतर के भाव को छोड़कर तू कूटस्थ बोधरूप अद्वैत आत्मा का विचार कर। अष्टावक्र कहते हैं कि दुर्बुद्धि पुरुष शुद्ध और अद्वैत आत्मा की भावना करते हैं लेकिन मोहवष उसे नहीं जानते हैं। इसलिए जीवन भर सुखरहित

रहते हैं। अष्टावक्र गीता कहती है कि कोई विरला ही आत्मा को अद्वय और जगदीश्वर रूप में जानता है वह जिसे करने योग्य मानता है उसे करता है। अष्टावक्र गीता में अनेकों बार अद्वैत का प्रयोग किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार समस्त उपाधियों से रहित अद्वैत सच्चिदानन्द स्वरूप अपने अन्तःकरण में स्थित आत्मा का चिन्तन करते रहो, इससे फिर संसार चक्र में नहीं पड़ोगे।

● **आत्मा के निःस्वभाव स्वरूप का अध्ययन—**

निःस्वभाव का अर्थ है स्वभाव रहित। राजा जनक अष्टावक्र गीता में कहते हैं कि सदा स्वभावरहित मुझको कहां कर्तापर? कहां भोक्तापन? कहां निष्क्रियतापन और कहां स्फुरण है? अथवा कहां प्रत्यक्ष ज्ञान है और कहां उसका फल है? अज्ञानी, मन और अहंकार में जीता मनुष्य चित्त की वृत्तियों के स्फुरण से ही स्वभाव बनता है तथा अहंकार के कारण ही वह अपने को कर्ता मानता है। अपने को कर्ता मानने के कारण ही वह कर्म-फल का भोक्ता होता है। मनुष्य में सक्रियता भी तभी आती है जब वह फल की आकांक्षा से कार्य करता है। यदि फल की आकांक्षा न हो तथा आत्मज्ञानी भी नहीं है तो वह निष्क्रिय तथा आलसी हो जायेगा, ज्ञानी इन सबसे भिन्न स्वभाव वाला होता है। वह मन तथा अहंकार के स्वभाव से रहित होकर केवल साक्षी भाव से जीता है।

● **आत्मा के निरंजन स्वरूप का अध्ययन—**

निरंजन का अर्थ है अंजनरहित अर्थात् निष्कलंक अथवा निर्दोष। अष्टावक्र गीता में अनेक बार आत्मा को निरंजन कहा गया है। महर्षि अष्टावक्र राजा जनक को कहते हैं कि तू असंग, क्रियाषून्य, स्वयंप्रकाश, निरंजन आत्मा है। पुनः अष्टावक्र गीता में राजा जनक कहते हैं कि मैं निरंज, शान्त, बोध हूँ, प्रकृति से परे हूँ। राजा जनक पुनः कहते हैं कि ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता ये तीनों यथार्थ नहीं है जिसमें ये तीनों भासते हैं कि मैं वही निरंजन हूँ। राजा जनक पुनः आत्मा के निरंजन होने की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि आत्मा भावों में नहीं है और भाव उस अनन्त निरंजन आत्मा में नहीं हैं। इस प्रकार मैं अनासक्त हूँ, स्पृहामुक्त हूँ और इसी के आश्रय हूँ। महर्षि अष्टावक्र कहते हैं कि आत्मा का स्वभाव दूर नहीं है, वह समीप या परिच्छिन्न भी नहीं है। वह निर्विकल्प, निरायास, निर्विकार और निरंजन है। अष्टावक्र गीता के अन्तिम अध्याय में राजा जनक निरंजन आत्मा के विषय में कहते हैं कि मेरे निरंजन स्वरूप में कहां पंचभूत, कहां देह, कहां इन्द्रिय अथवा कहां मन है, कहां शून्य है और कहां नैराष्य। मैं आत्मा होने से निरंजन हूँ। सभी दोष प्रकृति से उत्पन्न होते हैं जो अविद्या है, अज्ञान है। आत्मा अविद्या से रहित है, जिससे वह निरंजन है। मैं वहीं निरंजन आत्मा हूँ।

● **आत्मा के संताप रहित स्वरूप का अध्ययन—**

अष्टावक्र गीता में आत्मा को सभी प्रकार के संतापों से रहित बताया गया है। अष्टावक्र कहते हैं कि अविनाशी और संतापरहित आत्मा को देखने वाले मुनि को कहां विद्या, कहां विश्व, कहां देह, कहां अहंता-ममता है? जो व्यक्ति स्वयं के अन्दर की इस अविनाशी धारा को अनुभव कर लेता है उसके सब संताप समाप्त हो जाते हैं। फिर समझो, जितने भी जीवन में दुःख हैं, सब विचार के दुःख हैं। जितना भी जीवन का संताप है सब विचार का संताप है। किसी ने गाली दी और तुम्हारे भीतर विचारों की एक तरंग उठ गयी कि मेरा अपमान हो

गया। अपमान हो गया, इस विचार से दुःख होता है। ज्ञानी सुख और दुःख में, सम्मान और अपमान में निर्विचार बना रहता है। जो होता है उसे देख लेता है लेकिन उसको कोई बहुत मूल्य नहीं देता। तटस्थ बना रहात है संताप से मुक्त हो जाता है। संताप हम पैदा करते हैं सोच-सोचकर हम संताप के लिए कड़ी मेहनत करते हैं तब पैदा होता है संताप।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि जो व्यक्ति अविनाशी से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है वही संताप से मुक्त हो जाता है। अविनाशी के साथ, अकाल के साथ, जो कभी अन्त नहीं होगा उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लेता है वहीं संताप के पार हो जाता है। अतः क्रोध पर नियन्त्रण रख लेना ही संताप से दूर होना है।

निष्कर्षतः आत्मा सम्बन्धी विचारों में आद्योपान्त उपनिषदों का अनुवाद ध्वनित होता जान पड़ता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अष्टावक्र गीता तथा उपनिषदों के आत्मा सम्बन्धी विचारों में न केवल साम्य है बल्कि अत्यधिक एकरूपता भी है।

- गीता की दृष्टि में आत्मा साक्षी, विभु, पूर्ण, एक, शुद्ध-बुद्ध, मुक्त स्वभाव, चित्, अक्रिय, असंग, निःस्पृह और शान्त है।
- आत्मा की एकरूपता के विषय में अष्टावक्र गीता में कहा गया है कि आत्मा को एक जान और ऐसा जानकर मोक्ष को प्राप्त हो। अर्थात् परमार्थ तू एक है।
- आत्मा शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव, प्रिय, पूर्ण, निष्प्रपंच और निरामय हैं
- आत्मा निर्विकल्प, निरायास, निर्विकार और निरंजन है।
- आत्मा कर्ता-भोक्ता नहीं है। आत्मा में अज्ञान से देह, मन आदि उपाधियों के कारण कर्तापन-भोक्तापन प्रतीत होता है।
- गीता में आत्मा को ज्ञानस्वरूप, भगवान, परमात्मा, प्रकृति से परे, प्रकाश स्वरूप, विषुद्ध बोध तथा कूटस्थ कहा गया है।
- आत्मा निःसंग, क्रिया शून्य, स्वयं प्रकाश एवं निर्दोष है।
- आत्मा शुद्ध चैतन्य, आत्मा, ज्ञाता ज्ञान, ज्ञेय क त्रिपुटी से परे तथा त्रिपुटी का आधार है।
- गीता में आत्मा को देष और काल से परे कहा गया है। आत्मा काल और कारण की सीमा से परे है।
- आत्मा गीता की दृष्टि में अव्यय तथा अविनाशी है।
- आत्मा अखण्ड, स्वस्थ और कूटस्थ है, उसमें सजातीय, विजातीय, स्वगत आदि भेद नहीं हैं तथा मुक्ति बन्ध भी आत्मा में नहीं है।
- आत्मा ब्राह्मण आदि वर्ण से रहित, आश्रम आदि से रहित, आँख आदि इन्द्रियों का अविषय, असंग, निराकार तथा विश्व का साक्षी है।
- आत्मा निरपेक्ष, विकार रहित, स्वनिर्भर, शान्ति और मुक्ति का स्थान, अगाध बुद्धिरूप और क्षोभ शून्य है।

निष्कर्ष

श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञानयोग और कर्मयोग का समन्वय, जिसके अनुसार जीवन की सभी क्रियाओं को भगवावन के समर्पित करना और सभी क्रियाओं का समाधि में समीकरण अष्टावक्र को मान्य नहीं। वह केवल एक आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं और वह आत्मा निगुण है। कोई भी सांसारिक सम्बन्ध और अनुभव आत्मा को पूर्णत्व और परमार्थ से गुण और व्यवहार में ले जाते हैं। अष्टावक्र का आत्माद्वैत ज्ञान मनुष्य को निष्क्रियत्व की ओर नहीं ले जाता, बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एकत्व दर्शन करवाता है।

अष्टावक्र सांख्य दर्शन के प्रकृति-पुरुष के द्वैत सम्बन्ध को भी स्वीकार नहीं करते। उनके मत में इस रूप क्रिया आदि से युक्त संसार का मूल कारण भी प्रकृति नहीं आत्मा ही है। महत्व आदि जो द्वैत-जगत है वह नाममात्र को ही भिन्न है। यह परम आत्मा प्रकृति से परे है। जब कि श्रीमद्भगवद्गीता के मत में पुरुष और प्रकृति दोनों पुरुषोत्तम का ही अंश है। अष्टावक्र के मत में यह शुद्ध, परम आत्मा ही है। जिससे सभी परिवर्तनशील पदार्थ उत्पन्न हो रहे हैं। अजन्मा और अविनाशी आत्मा प्रयोग सिद्ध निर्माण-ध्वंस, व्याप्त-अव्याप्त, आदि-अन्त, जीव, ब्राह्मण आदि भेदों से परे है।

सन्दर्भ सूची

1. अष्टावक्र गीता टीकाकार-राय बहादुर बाबू जालिम सिंह, प्रकाशक-तेज कुमार बुक डिपो (प्रा०) लि० लखनऊ, बारहवॉ संस्करण-सन् 2000 ई०
2. अष्टावक्र गीता व्याख्याकार-नन्द लाल दषोरा, प्रकाशक-रणवीर प्रकाशन, हरिद्वार। बारहवॉसंस्करण-सन् 2002 ई०
3. अष्टावक्र गीता अनुवादक-स्वामी हरिहरदास त्यागी, प्रकाशक-रणवीर प्रकाशन, हरिद्वार। प्रथमसंस्करण-सन् 2001 ई०
4. अष्टावक्रमहा गीता व्याख्याकार-काका हरिओउम्, प्रकाशक-मनोज प्रकाशन, दिल्ली। संस्करण-सन् 2004 ई०
5. अष्टावक्रमहा गीता व्याख्याकार-ओशो, प्रकाशक-ताओ प्रकाशन प्रा० लि० पुणे।
6. अष्टावक्रमहा गीता व्याख्याकार-आचार्य मानिक, प्रकाशक-साधना प्रकाशन, दिल्ली। संस्करण-सन् 2004 ई०

स्मृतिसाहित्य-

1. श्रीमद्भगवद् गीता प्रकाशक-गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद् गीता टीकाकार-जयदयाल गोयन्दका।
3. तत्वविवेचनी हिन्दी- टीकाप्रकाशक-गीता प्रेस, गोरखपुर, उन्नीसवॉस संस्करण- सं० 2049।
4. शिवगीता टीकाकार- पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, प्रकाशक- खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई संस्करण-सन् 2002 ई० पप

अद्वैत दर्शन साहित्य-

1. अप्पय दीक्षित सिद्धान्तलेष संग्रह अनुवादक-वेदान्ताचार्य पं० श्रीमूलषंकरव्यास, प्रकाशक-भारतीय बुककारपोरेशन, दिल्ली संस्करण-सन् 2005 ई०
2. चित्सुखाचार्य तत्वप्रदीपिका (चित्सुखी) प्रकाशक-उदासीन संस्कृत विद्यालय, वाराणसी तृतीय संस्करण-सन् 1985 ई०

3. दत्तात्रेय अवधूत गीता अनुवादक और व्याख्याकार—नन्दलालदणोरा, प्रकाशक—रणवीर प्रकाशन, हरिद्वार। बारहवीं संस्करण—सन् 2002 ई०
4. दत्तात्रेय जीवनमुक्त गीता टीकाकार—ब्रजरत्न भट्टाचार्य, प्रकाशक—खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई। संस्करण—सन् 1999 ई०
5. नृसिंहाश्रम वेदान्त तत्व विवेक अनुवादक—स्वयं प्रकाशगिरि, प्रकाशक — श्री दक्षिणा मूर्ति मठ प्रकाशन, वाराणसी प्रथम संस्करण—सन् 1997 ई०
6. पद्मपादाचार्य पंच पादिका टीकाकार एवं सम्पादक — डा० किशोर दास स्वामी, प्रकाशक — स्वामी रामतीर्थ मिशन, देहरादून। संस्करण—सन् 2001 ई०
7. विद्यारण्य स्वामी जीवन मुक्ति विवेक टीकाकार—ठाकुर उदयनारायण सिंह, प्रकाशक—चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी द्वितीय संस्करण— सन् 2041

सामान्य ग्रन्थ—

1. आधुनिक भारतीय चिन्तन विश्वनाथ, नरवणे अनु० नोमि चन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली—1966।
2. गीता दपर्ण स्वामी रामसुख दास गीता प्रेस, गोरखपुर, 1991।
3. गीतातत्वांक स्वामी रामसुख दास गीता प्रेस, गोरखपुर, 1948।
4. गीता उपदेश जगदीश चन्द्र विद्यार्थी आर्य कुमार सभा, दिल्ली, 1995।
5. गीता का कर्म योग विश्वबन्धु वी०वी०आर०आई० होशियारपुर, 1970।
6. गीता का योग रामसुख दास गीता प्रेस, गोरखपुर, 1985।
7. गीता का प्रेरक तत्व काका साहबे कालेत्रकर भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1967।
8. गीता धर्म गीता धर्मकार्यालय, काशी, 1938।
9. गीता का व्यवहार राम गोपाल मेहता किताब महल, इलाहाबाद।
10. चौबीस गीता पं० श्रीराम शर्मा आचार्य संस्कृत संस्थान, ख्वाजा, कुतुबरोड़, बरेली, 1971।
11. भारतीय दर्शन डा० राधा कृष्णन नन्दकिषोर राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1966।
12. भारतीय दार्शनिक समस्यायें नन्दकिषोर शर्मा राजस्थान साहित्य संस्थान, जयपुर।
13. वेदान्त दर्शनवादरायण व्याख्या गोविन्दानन्द, वैकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई, 1994।
14. वेदान्त दर्शन डायसनपाल हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1971।
15. श्रीमद्भगवद् गीता घनश्याम दास जालन गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, इलाहाबाद।
16. श्रीमद्गणेश गीता नीलकण्ठ आनन्द आश्रम, पूना।
17. श्रीमद्भगवद् दर्शन वाई०बी०कल्हकर पूना विद्यापीठ, पूना।
18. योग दर्शन डा० सम्पूर्णानन्द हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ।